

चन्द्रिका सिंह (मृत) उनके विधिक प्रतिनिधियों द्वारा एवं एक अन्य

बनाम

सरजुग सिंह एवं एक अन्य

30 नवम्बर, 2006

[एस.बी. सिन्हा एवं मार्कण्डेय काटजू, न्यायमूर्तिगण]

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 :

धारा 14(1) — हिन्दू विधवा — अधिनियम के प्रवर्तन से पूर्व अपने पति के हिस्से के कब्जे में थी — अभिनिर्धारित किया, धारा 14(1) के अनुसार वह पूर्ण स्वामिनी बन गई — उसके द्वारा निष्पादित दान विलेख वैध — भूमि अर्जन अधिनियम, 1894 — हिन्दू विधवा द्वारा दान की गई भूमि के प्रतिकर का दावा।

रघुबर सिंह एवं अन्य बनाम गुलाब सिंह एवं अन्य, [1998] 6 एस.सी.सी. 314 तथा शकुन्तला देवी बनाम कमला एवं अन्य, [2005] 5 एस.सी.सी. 390 पर अवलंबन किया गया।

दीवानी प्रक्रिया संहिता, 1908 :

धारा 100 — द्वितीय अपील — अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा अभिलिखित तथ्यात्मक निष्कर्षों में हस्तक्षेप — व्याप्ति — अभिनिर्धारित किया, धारा 100 के अधीन क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते समय उच्च न्यायालय को तथ्यात्मक निष्कर्ष से संबंधित कोई सारवान विधि प्रश्न निरूपित करना आवश्यक है — सामान्यतः, जब तक पर्याप्त एवं ठोस कारण विद्यमान न हों, अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा अभिलिखित तथ्यात्मक निष्कर्ष उच्च न्यायालय पर बाध्यकारी होते हैं।

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार : दीवानी अपील संख्या 4409 सन् 2000।

पटना उच्च न्यायालय द्वारा एस.ए. संख्या 127 सन् 1995 में पारित दिनांक 24.2.1999 के अंतिम निर्णय एवं आदेश के विरुद्ध।

अपीलकर्ताओं की ओर से : ई.आर. कुमार, पी.एच. पारेख, राजेन्द्र रोहतगी तथा सुश्री दीक्षा राय, अधिवक्ता।

उत्तरदाताओं की ओर से : एस.बी. उपाध्याय, शिव मंगल शर्मा तथा सुश्री कुमुद एल. दास, अधिवक्ता।

न्यायालय का आदेश इस प्रकार दिया गया :

आदेश

एक ईश्वर दत्त उक्त संपत्ति के स्वामी थे। उनकी मृत्यु के पश्चात उनके तीन पुत्र—महादेव, हीरा तथा महाबीर—उत्तरजीवी रहे। महाबीर की मृत्यु निःसंतान हुई। अतः संपत्ति में उसका हित महादेव तथा मेवा (हीरा के पुत्र) में निहित हो गया, क्योंकि मेवा हीरा का उत्तराधिकारी था। मेवा की मृत्यु वर्ष 1921-22 में हुई और उसके पश्चात उसका एक पुत्र दामोदर उत्तरजीवी रहा। कोलेशरा देवी, दामोदर की विधवा थीं, जिनकी मृत्यु की सटीक तिथि ज्ञात नहीं है, किंतु कहा जाता है कि उनका देहावसान वर्ष 1932 के पश्चात किसी समय हुआ।

इस वाद के वादीगण राम लायक के उत्तराधिकारी हैं, जो महादेव के पुत्रों में से एक थे, जबकि इस वाद के उत्तरदाता राजा के उत्तराधिकारी हैं, जो महादेव के दूसरे पुत्र थे।

विवादित संपत्तियाँ, जो प्लॉट सं. 901, 902 तथा 907 से संबंधित थीं, भूमि अर्जन अधिनियम के उपबंधों के अधीन अर्जित की गईं। उक्त संपत्तियों का नामांतरण दामोदर के नाम पर किया गया था।

प्रतिकर की राशि उत्तरदाता मोना देवी को अदा की गई।

वर्तमान अपीलकर्ताओं ने भूमि अर्जन अधिनियम की धारा 30 के अधीन समाहर्ता के समक्ष एक आवेदन प्रस्तुत किया, जिसके परिणामस्वरूप एक निर्देश किया गया। भूमि अर्जन अधिनियम के अधीन निर्देश न्यायालय के समक्ष विचारार्थ आए मुद्दों में से एक यह था कि क्या कोलेशरा देवी द्वारा अपने आधे हिस्से के प्लॉट सं. 901, प्लॉट सं. 902 के पूर्ण हिस्से तथा प्लॉट सं. 907 के तीन-चौथाई हिस्से के संबंध में दिनांक 7.5.1960 के दान विलेख द्वारा वर्तमान अपीलकर्ताओं के पक्ष में किया गया दान विधि अनुसार वैध था।

अन्य बातों के साथ यह अभिनिर्धारित किया गया कि कोलेशरा देवी, जो अपने पति दामोदर की मृत्यु के पश्चात उनके हिस्से के कब्जे में भरण-पोषण के अधिकार के रूप में थीं, हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की धारा 14(1) के अनुसार उस संपत्ति की पूर्ण स्वामिनी बन गई थीं।

संदर्भ न्यायालय द्वारा पारित निर्णय एवं डिक्री को प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा उलट दिया गया।

उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय द्वारा वर्तमान उत्तरदाताओं द्वारा दायर अपील स्वीकार कर ली तथा विचारण न्यायालय के निर्णय की पुष्टि करते हुए यह मत व्यक्त किया :

“...यह विवादित नहीं है कि श्रीमती कोलेशरा देवी भरण-पोषण की अधिकारिणी थीं और उनके पति का देहांत वर्ष 1937 से पूर्व हो चुका था। अभिलेख पर ऐसा कुछ नहीं लाया गया है जिससे यह सिद्ध हो कि उन्हें भरण-पोषण के बदले उक्त भूमि पर कब्जा प्रदान किया गया था जिसे उन्होंने उत्तरदाताओं के पक्ष में दान कर दिया था। ऐसे साक्ष्य के अभाव में, वह दान करने के लिए प्राधिकृत नहीं थीं और प्रदर्श-1 अवैध था।”

यह कहा गया कि पक्षकारों के हिस्से का विस्तार निम्नानुसार है :

प्लॉट सं.	मूलतः जिसके नाम याचिकाकर्ताओं का हिस्सा	उत्तरदाताओं का हिस्सा
901	महादेव आधा	आधा
902	मेवा पूर्ण (कोलेशरा देवी द्वारा दान किया गया)	—
903	महाबीर (मेवा, कोलेशरा देवी द्वारा दान किया गया तथा महादेव का एक-चौथाई हिस्सा)	एक-चौथाई (महादेव का एक-चौथाई हिस्सा)
कुल	तीन-चौथाई	एक-चौथाई

अपीलकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि, जब यह तथ्यात्मक निष्कर्ष अभिलिखित किया जा चुका था कि कोलेशरा देवी विवादित संपत्ति के कब्जे में थीं, तब उच्च न्यायालय ने उसमें हस्तक्षेप करके स्पष्ट त्रुटि की है।

इस संबंध में हमारा ध्यान इस न्यायालय के निर्णय रघुबर सिंह एवं अन्य बनाम गुलाब सिंह एवं अन्य, [1998] 6 एस.सी.सी. 314 की ओर आकर्षित किया गया। श्री उपाध्याय, उत्तरदाताओं की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने दूसरी ओर आक्षेपित निर्णय का समर्थन किया।

हमारे समक्ष उठाए गए प्रश्न पर विचार करने से पूर्व यह उल्लेख करना आवश्यक है कि उच्च न्यायालय ने इस मामले का निपटारा अत्यंत लापरवाहीपूर्ण ढंग से किया। उसने प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा अभिलिखित तथ्यात्मक निष्कर्ष में बिना कोई कारण निर्दिष्ट किए हस्तक्षेप कर दिया। दीवानी प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के अधीन अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते समय उच्च न्यायालय के लिए तथ्यात्मक निष्कर्ष से संबंधित किसी सारवान विधि प्रश्न का निरूपण करना आवश्यक होता है। इस संबंध में उच्च न्यायालय की अधिकारिता सीमित होती है। सामान्यतः, जब तक पर्याप्त और ठोस कारण विद्यमान न हों, अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा अभिलिखित तथ्यात्मक निष्कर्ष उच्च न्यायालय पर बाध्यकारी होते हैं। प्रथम अपीलीय न्यायालय स्पष्ट रूप से निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुँचा था :

“...मेवा महतो की मृत्यु हुई और उसके पश्चात दामोदर महतो उत्तरजीवी रहे तथा दामोदर महतो की मृत्यु हुई और उनके पश्चात कौलेशरा उत्तरजीवी रहें, जो विचारित साक्ष्यों के अनुसार प्रतिवादी के कथनानुसार केवल भरण-पोषण की अधिकारिणी के रूप में नहीं, बल्कि सीमित स्वामिनी के रूप में कब्जे में आई थीं। हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 के प्रवर्तन से पूर्व वह सीमित स्वामिनी थीं और उस हैसियत से वह मेवा महतो के नाम अभिलिखित भूमि पर कब्जा बनाए रखने के लिए सक्षम थीं तथा हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम के प्रवर्तन के पश्चात वह उसकी पूर्ण स्वामिनी बन गईं। दिनांक 7.5.1960 का दान विलेख हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम के प्रवर्तन के पश्चात निष्पादित किया गया था, उस समय उन्हें दान विलेख निष्पादित करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त था। विद्वान अधीनस्थ न्यायाधीश ने दान विलेख प्रदर्श-1 को कोई महत्व नहीं दिया है और यह अभिनिर्धारित किया है कि विधि की दृष्टि में उसने अपना महत्व नहीं खोया है। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, **कौलेशरी** ने हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम के प्रवर्तन के पश्चात विलेख निष्पादित किया था और उन परिस्थितियों में, 30 वर्ष पुराने दस्तावेज होने के कारण उस पर प्रामाणिकता की उपधारणा लागू होती थी।”

“एक बार यह पाया गया कि कोलेशरा देवी भरण-पोषण के अपने अधिकार के एवज में विवादित भूमि के कब्जे में थीं, तब हमारे मत में हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की धारा 14 की उपधारा (1) स्पष्ट रूप से आकर्षित होगी।”

रघुबर सिंह एवं अन्य बनाम गुलाब सिंह एवं अन्य, [1998] 6 एस.सी.सी. 314 में इस न्यायालय ने विधि को निम्नलिखित शब्दों में प्रतिपादित किया था :

“17. शास्त्रीय हिन्दू विधि के अधीन, मृत पति की संपत्तियों में से हिन्दू विधवा का भरण-पोषण करने का दायित्व, हिन्दू स्त्रियों का संपत्ति पर अधिकार अधिनियम, 1937 के प्रवर्तन के साथ वैधानिक मान्यता प्राप्त कर गया। तत्पश्चात इस विषयक विधि का समेकन तथा संहिताकरण हिन्दू विवाहित स्त्रियों का पृथक निवास एवं भरण-पोषण अधिकार अधिनियम, 1946 द्वारा किया गया, जो 23.4.1946 से प्रवृत्त हुआ। इस प्रकार हिन्दू विधवा का भरण-पोषण का अधिकार, जो एक पूर्वविद्यमान अधिकार था, उपर्युक्त दोनों अधिनियमों द्वारा मान्यता प्राप्त हुआ, किंतु उन अधिनियमों द्वारा पहली बार सृजित नहीं किया गया। शास्त्रीय हिन्दू विधि के अधीन उसका भरण-पोषण का अधिकार वैधानिक अधिनियमों के प्रवर्तन से बहुत पहले से विद्यमान था। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात, सामंती बंधनों से महिलाओं की मुक्ति की आवश्यकता और भी अधिक अनिवार्य हो गई। शास्त्रीय हिन्दू विधि द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में प्रदत्त उनके अधिकारों के विस्तार हेतु हिन्दू महिलाओं के बीच बढ़ते आंदोलन भी इसका कारण थे। इसी समय संसद ने हस्तक्षेप किया और हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955, हिन्दू दत्तक ग्रहण एवं भरण-पोषण अधिनियम, 1956 तथा हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 जैसे विभिन्न अधिनियम अधिनियमित किए, जिनमें निर्वसीयत उत्तराधिकार का भी प्रावधान किया गया।”

“18. हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 ने हिन्दू विधि की संरचना में व्यापक परिवर्तन किए। इसने मृत पति की संपत्ति, जो उसके भरण-पोषण के अधिकार के एवज में उसके कब्जे में थी, के संबंध में हिन्दू विधवा की शक्तियों पर लगी पारंपरिक सीमाओं को समाप्त कर दिया तथा उसे उस संपत्ति की पूर्ण स्वामिनी बना दिया, जिस पर इससे पूर्व उसका केवल सीमित अधिकार था।”

इसके पश्चात अभिनिर्धारित किया :

“24. ...तदनुसार, हम अभिनिर्धारित करते हैं कि हिन्दू स्त्री का भरण-पोषण का अधिकार पति और पत्नी के मध्य सामाजिक तथा लौकिक संबंध से उत्पन्न होता है।

विधवा के मामले में यह अधिकार एक 'पूर्वविद्यमान अधिकार' है, जो शास्त्रीय हिन्दू विधि के अधीन 1937 अथवा 1946 के अधिनियमों के पारित होने से पूर्व भी विद्यमान था। उन अधिनियमों ने केवल उस स्थिति को मान्यता प्रदान की जो शास्त्रीय हिन्दू विधि के अधीन पहले से विद्यमान थी तथा उसे 'वैधानिक आधार' प्रदान किया। जहाँ कोई हिन्दू विधवा अपने पति की संपत्ति के कब्जे में होती है, वहाँ उसे उस संपत्ति से भरण-पोषण प्राप्त करने का अधिकार होता है और वह अपने भरण-पोषण के अधिकार के एवज में उस संपत्ति का कब्जा बनाए रखने की भी अधिकारिणी होती है।"

शकुन्तला देवी बनाम कमला एवं अन्य, [2005] 5 एस.सी.सी. 390 में यह अवलोकित किया गया :

"11. तथापि, *बलवंत सिंह*, [1997] 7 एस.सी.सी. 137 के मामले में इस न्यायालय का निर्णय इस वाद के गुण-दोष पर प्रभाव डालेगा, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि केवल घोषणात्मक डिक्री के आधार पर कब्जे के लिए वाद पोषणीय नहीं होगा, क्योंकि ऐसी घोषणात्मक डिक्री ने प्रत्यावर्तियों के पक्ष में कोई स्वत्व अंतरण नहीं किया था। वह मामला हिन्दू विधि के अधीन था, जिसमें मूल स्वामी की विधवा ने वर्ष 1954 में भूमि का दान कर दिया था और उसका नाम उसके दत्तक पुत्रों के पक्ष में नामांतरित कर दिया गया था। प्रत्यावर्तियों ने यह घोषणा प्राप्त करने के लिए वाद दायर किया कि विधवा द्वारा किया गया अंतरण उनके प्रत्यावर्ती अधिकारों पर बाध्यकारी नहीं था। वाद डिक्री कर दिया गया और यह अभिनिर्धारित किया गया कि विधवा द्वारा किया गया दान प्रत्यावर्तियों के अधिकारों को प्रभावित नहीं करेगा। तत्पश्चात् संपत्ति पुनः विधवा के नाम नामांतरित कर दी गई। वर्ष 1970 में विधवा ने पुनः विवादित संपत्ति अपने दत्तक पुत्रों को दान कर दी और वर्ष 1973 में उसकी मृत्यु हो गई। प्रत्यावर्तियों द्वारा पूर्ववर्ती डिक्री के आधार पर कब्जा पुनर्प्राप्ति के लिए दायर वाद में न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि चूँकि हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 द्वारा प्रदत्त विस्तारित अधिकारों के कारण प्रत्यावर्तियों द्वारा प्राप्त घोषणात्मक डिक्री के पश्चात् भी विधवा संपत्ति के कब्जे में बनी रही और वह अधिनियम के अधीन संपत्ति की पूर्ण स्वामिनी बन गई थी, इसलिए वर्ष 1970 में उसके द्वारा अपने दत्तक पुत्रों के पक्ष में किए गए संपत्ति के दान को अपास्त नहीं किया जा सकता था।"

“12. वर्तमान वाद के तथ्य भी लगभग समान हैं, क्योंकि इस मामले में भी हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम के प्रवर्तन के पश्चात, धारा 14(1) के प्रभाव से वसीयत के अधीन उत्तमदासी को प्राप्त सीमित अधिकार वादगत संपत्ति में पूर्ण अधिकार में परिवर्तित हो गया। फलतः वह संपत्ति की पूर्ण स्वामिनी बन गई। अतः वसीयत में परिकल्पित प्रत्यावर्ती द्वारा पूर्व में प्राप्त कोई भी घोषणात्मक अधिकार कब्जे के वाद का आधार नहीं बन सकता, जब तक कि, स्वाभाविक रूप से, कब्जे के वाद में दावेदार घोषणात्मक डिक्री से स्वतंत्र कोई श्रेष्ठ स्वत्व सिद्ध न कर दें।”

चूँकि कोलेशरा देवी हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 14(1) के उपबंधों के अनुसार संपत्ति की पूर्ण स्वामिनी बन गई थीं, इसलिए वह वर्ष 1960 में विक्रय विलेख निष्पादित करने के लिए सक्षम थीं।”

“इस न्यायालय के प्रामाणिक निर्णयों के आलोक में, हमारा मत है कि प्रथम अपीलीय न्यायालय के सुविचारित निर्णय को पलटते हुए उच्च न्यायालय ने स्पष्ट त्रुटि की है और तदनुसार उसका निर्णय अपास्त किया जाता है।

अपील स्वीकार की जाती है। व्ययों के संबंध में कोई आदेश नहीं।

अपील स्वीकार की गई।

आर.पी.

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।